अध्याय एक

साठोत्तरी उपन्यास - उपन्यास के तत्व

अध्याय एक
साठोत्तरी उपन्यास - उपन्यास के तत्व

1. उपन्यास के तत्व

साहित्य शास्त्रियों ने उपन्यास को नियमों से बाँधने का प्रयत्न किया है। उन्होंने उपन्यासों के भीतर निहित विभिन्न तत्वों का विश्लेषण करके उन पर अलग-अलग विचार किया है। ये तत्व ही उपन्यास के प्रधान अवयव माने गये हैं।

मानव जीवन का प्रतिरूप है उपन्यास इसलिए उसका संबन्ध मानव-व्यापारों, क्रिया-कलापों और घटनाओं से होता है, इसी को उपन्यास की 'कथा-वस्तु' कहते हैं। मानव, जो इन सब घटनाओं का विधाता है वह उपन्यास-सृष्टि का 'पात्र' कहलाता है। इन पात्रों की बातचीत को उपन्यास जगत में कथोपकथन कहते हैं। किसी विशिष्ट स्थान और किसी विशिष्ट समय पर ये जीवन घटनाएँ घटती हैं। इस स्थान और समय को ही परिस्थिति, वातावरण अथवा देश-काल कहते हैं। 'शैली' उपन्यासकार की अभिव्यंजना के ढंग को कहते हैं। यह उपन्यास का पाँचवाँ तत्व है। इसके अलावा एक छठा तत्व भी है, वह है 'उद्देश्य'। उपन्यास में घटनाओं, पात्रों, मनोवेगों आदि के प्रस्तुतीकरण को देखते ही थोडा-बहुत इस बात का पता चलता है कि उपन्यासकार का जीवन के प्रति क्या विचार है और वह संसार को किस दृष्टि से देखता है। इसको हम उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत व्याख्या, आलोचना अथवा जीवन दर्शन कह सकते हैं। और इसे उद्देश्य भी कह सकते हैं।

कथावस्तु

उपन्यास का यह प्रमुख तत्व है। इसके बिना उपन्यास का अस्तित्व नहीं है। 'उपन्यास का विषय उसका 'वस्तु' कहलाता है और उसकी संघटना तथा निर्वाह में उपन्यास की कला होती है। उपन्यासकार किसी विशेष योजना की दृष्टि से अपनी कथा को संघटित करता है, घटनाओं को एक विशेष क्रम में रखता है। उसकी इस विशिष्ट योजना को ही 'कथावस्तु' कहते हैं।'[1]

उपन्यासकार जीवन की सभी अनुभूतियों को याद करके उसे चित्रित करने की कोशिश करे तो निश्चय ही उसका ग्रन्थ कभी पूर्ण नहीं होगा और यह पाठक के समझ की बाहर होगा। इसलिए उन्हीं अनुभूतियों को उपन्यासकार को चित्रित करना चाहिए जो उनकी संवेदना को सबसे अधिक प्रभावित करता है।

'कथावस्तु' को कई भागों में विभाजित किया गया है। व्यावहारिक स्तर पर उसके प्रमुख भाग निम्न हैं - आदि, मध्य, अंत। कथावस्तु को असरदार बनाने के लिए उपन्यास का प्रारंभ नाटकीय, रोचक-संवाद के द्वारा किया जाता है। उसके मध्य में आरंभिक समस्या का स्वाभाविक विकास होता है, तो उसके प्रभावपूर्ण अंत पर उपन्यास की सफलता निर्भर रहती है।'[2] उपन्यास में कथा का अंत महत्वपूर्ण होता है। असल में यह उपन्यास का प्राण है। उपन्यास का कथा की दृष्टि से भी विभाजन किया जा सकता है। इसके प्रमुखतः दो भाग होते हैं, मुख्य कथा और गौण कथा। मुख्य कथा उपन्यास के प्रमुख पात्रों से संबन्धित है तो गौण कथा अन्य गौण पात्रों से संबन्धित होता है। विषय की दृष्टि से भी कथावस्तु का विभाजन किया जा सकता है, इसमें विषयवस्तु पर बल रहता है - जैसे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक, धार्मिक आदि। काल की दृष्टि

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 443
2. गिरिराज किशोर का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. सुरेश चांगदेव साळुके - पृ. 78

से भी कथावस्तु का विभाजन किया जा सकता है। इसमें काल की प्रमुखता रहती है जैसे ऐतिहासिक, पौराणिक आदि।

उपन्यास की कथावस्तु इतनी रोचक होनी चाहिए कि पढनेवाला थोडे समय के लिए अपनी सुध-बुध खो जाए। उपन्यासकार को हमेशा यह ध्यान रखना है कि वह जो कुछ भी लिखे उसका ज्ञान उसे होना चाहिए। नहीं तो पाठक को वह अट-पटा सा लगेगा। अथवा जिस बात का उसे अनुभव या ज्ञान नहीं हो उसे लिखने की कोशिश नहीं करना चाहिए। इस बात पर हैनरी जोंस का विचार है कि 'अगर किसी लेखक की बुद्धि, कल्पना कुशल है तो वह सूक्ष्मतम भावों से जीवन को व्यक्त कर देती है। वह वायु के स्पंदन को भी जीवन प्रदान कर सकती है। लेकिन कल्पना के लिए कुछ आधार अवश्य चाहिए। जिस तरुण - लेखिका ने कभी सैनिक छावनियाँ नहीं देखीं उससे यह कहने में कुछ भी अनौचित्य नहीं कि आप सैनिक-जीवन में हाथ न डालें।"[1] अनुभव से लिखने का मतलब यह नहीं है कि लेखक को अपना अनुभव हो बल्कि दूसरों से बातचीत करके भी बहुत अनुभव ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

कथावस्तु के निर्माण में भी एक कला होती है। और इस कला पर ही उसकी रंजन शक्ति निर्भर रहती है। लेखक का ध्यान घटनाओं की कुशल संघटना की ओर सदैव रहना चाहिए। इन घटनाओं को आपस में ऐसा मिलाना चाहिए कि इसे देखने से यह नहीं पता चले कि कोई बात छूट गई है या असंगत है। बल्कि उनके सभी अंगों में साम्य और समचीनता होना चाहिए। 'घटनाओं की शाखाओं - प्रशाखाओं को अपने मूल से तथा एक दूसरे से सहज रीति से प्रस्फुटित होना चाहिए। घटनाएँ चाहे जितनी असाधारण हो परन्तु उनका प्रवाह इस प्रकार नियोजित होना चाहिए कि चाहे हम उनका आभास पहले पा गये हो या नहीं वे हमें पूर्वकथित घटनाओं का तर्क-संगत फल प्रतीत हो।'[2]

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 445
2. वही - पृ. 446

उपन्यास को कथावस्तु की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला वह जिसकी कथावस्तु संबद्ध या सुगठित है। पहलेवाले में मात्र बहुत-सी घटनाओं का भरमार होता है। उनमें आपस में कोई संबन्ध नहीं होता। एक प्रकार से ऐसा उपन्यास किसी व्यक्ति के जीवन की फुटकल घटनाओं का इतिहास-सा होता है। 'मैला आंचल' तथा 'परती परिकथा' जैसी कृतियाँ शिथिल कथावस्तुवाले उपन्यास के अंतर्गत आते है। इन कृतियों में कोई केन्द्रीय नायक नहीं है जो इन बिखरी हुई घटनाओं को आपस में मिला सके या एकत्र कर सके।

जिस उपन्यास की कथावस्तु सुगठित हो ऐसे उपन्यासों में घटनाएँ एक दूसरे से संबन्ध रहती है। और इसको अलग करके नहीं देखा जा सकता। और यह सब घटनाएँ उपसंहार की ओर आते-आते ऐसा मिला हुआ प्रतीत होता हैं कि उसे अलग करके देखना मुश्किल हो जाता है। अगर उसे अलग करने की कोशिश की जाती है तो सबकी महत्ता नष्ट हो जाती है। एक व्यापक विधान के अनुसार ऐसे उपन्यासों की रचना की जाता है और घटना-समूहों पर ही उनकी सफलता निर्भर रहती है। 'किसी भी वस्तु योजना के संबन्ध में केवल दो बातें देखनी चाहिए - एक तो यह कि उसका प्रवाह स्वाभाविक है और उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है और दूसरी यह कि उसके विकास में जो उपाय काम में लाये गये हैं वे कम-से-कम उन परिस्थितियों में विश्वासजनक प्रतीत होते हैं।'[1]

चरित्र-चित्रण

चरित्र ही उपन्यास के समस्त तथ्यों का मूलाधार है। रागों और मनोवेगों के आधार स्वरूप मानव पात्रों का चित्रण - यह है काव्य के क्षेत्र में चरित्र-चित्रण का अर्थ। यह जानना आवश्यक है कि सफल चरित्र-चित्रण की क्या-क्या विशेषताएँ है। और उसके लिए किन-किन साधनों का प्रयोग उपन्यासकार करता है।

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 447

उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र है इसलिए पात्रों की सजीवता इसका सबसे बडा गुण है। 'उपन्यासकार की मनः कल्पित सृष्टि में यदि हम पात्रों में अपने ही जैसा राग, द्वेष, क्रोध, करुणा, प्यार, घृणा आदि भाव देखें, यदि वे विशेष परिस्थितियों में मानव जैसा आचरण करते हुए दिखलाई पडे, यदि हम स्वयं उनके सुख में सुख, और दुःख में दुःख का अनुभव करें तो वे हमें अपने जैसे लगेंगे और यही मानव का सफल चित्र कहा जाएगा।'[1] चरित्रांकन इतना सफल होना चाहिए कि उपन्यास पढ़ जाने के बाद भी उसके पात्र हमारे मन में जीवित रह सकें। यह सजीवता तभी आ सकती है जब उपन्यासकार मानवता की सामान्य पीठिका पर अपनी कल्पना के ज़रिये चरित्र का चित्रण करे और उसमें कोई अतिशयोक्ति न हो।

पात्रों का परिचय देने के तरीके नाटकों में अनेक है पर उपन्यास में केवल एक है। उपन्यास पढ़नेवालों को पात्रों का चालढाल, वेशभूषा, बातचीत इन सबका अनुमान लेखक के वर्णन से मिलता है। उपन्यास लिखते समय लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पात्रों के क्रिया-कलाप, रीति-नीति, बोलचाल तथा मनोवृत्ति का कैसा और किस तरह वर्णन अपेक्षित है, जिससे पात्रों का चरित्र स्पष्ट हो। प्रेमचंद के अनुसार 'उपन्यास के चरित्र का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़नेवालों पर उसका असर पड़ेगा और यह लेखक की रचना शक्ति पर निर्भर है।'[2] चरित्र-चित्रण में सजीवता लाने के लिए उपन्यासकार को उत्तम स्तर की लेखकीय प्रतिभा, व्यापक जीवनानुभव, समसामायिक समस्याओं का ज्ञान और मानव के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता होती है।

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 447
2. साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचंद - पृ. 72

विश्लेषणात्मक (एनैलिटिक) और कार्य-कारण सापेक्ष या नाटकीय (ड्रमाटिक) जैसी दो रीतियाँ प्रधानतः चरित्र चित्रण के लिए आजकल प्रयुक्त होता है। विश्लेषणात्मक रीति में अपने पात्रों को उपन्यासकार निःसंग दृष्टि से देखता है, पात्रों के विचारों, भावों, प्रवृत्तियों आदि का विश्लेषण करता है और उपन्यासकार कभी-कभी उसका आधिकारिक निर्णय भी दे डालता है। पर दूसरी रीति ही आधुनिक है। आजकल सामान्य लोगों को माध्यम बनाकर चरित्र-चित्रण हो रहे हैं। जिससे उपन्यास में वास्तविकता और सजीवता आती है।

उपन्यासों की रोचकता और यथार्थता के योग के लिए कथावस्तु और पात्रों का उचित योग होना ज़रूरी है। पात्रों के अनुसार वस्तु-विन्यास न किया जाय तो पात्र केवल कठपुतली के समान रह जाएँगे। इसलिए पात्र और कथावस्तु दोनों में सामंजस्य होना अनिवार्य है। शिवनारायण श्रीवास्तवजी के अनुसार 'कथावस्तु चाहे सीधी-सादी हो या जटिल उसका विकास इसी के फलस्वरूप होता है कि कुछ विशेष भावों, प्रवृत्तियों और विचारोंवाले मनुष्य साथ-साथ ऐसी परिस्थिति में रख दिये जाते हैं जिससे एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है अथवा आपस में स्वार्थों का द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। संभव है ये परिस्थितियाँ बहुत आवश्यक हो फिर भी परिस्थितियों के प्रति वैयक्तिक प्रतिक्रिया सदैव आकर्षण का केन्द्र रहेंगी।'[1] कथावस्तु के समान ही प्रधानता चरित्र-चित्रण को भी देना चाहिए। यानी कथावस्तु और चरित्र-चित्रण आपस में मिल हुए होते हैं।

कथोपकथन

संवाद अथवा कथोपकथन उपन्यास का एक अनिवार्य तत्व है। कथोपकथन पात्रों के चरित्र-निर्माण में बडा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कथानक को आगे बढाने में

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 450

भी कथोपकथन का होना अनिवार्य है। इसके अलावा उपन्यास में नाटकीयता लाने, पात्रों की मानसिक स्थितियों को जानने, विरसतापूर्ण प्रसंगों में सरसता लाने तथा पात्रों के संवादों द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य की जानकारी हासिल करने में कथोपकथन की बड़ी सहायता होती है। डॉ. माक्खनलाल शर्मा के अनुसार 'उपन्यास का एक संवाद भी ऐसा नहीं होना चाहिए जिसका उद्‌देश्य को पूर्ण करने में योगदान न हो। उपन्यास में प्रत्येक संवाद का एक-एक शब्द कडी के समान एक दूसरे से गूथा हुआ होना चाहिए, जिसमें अनावश्यक के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।'[1]

उपन्यासकार को उपन्यास लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पात्रों कि बातचीत प्रसंगानुकूल और स्वाभाविक हो। इसके साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह कथोपकथन पाठक के लिए नीरस न हो जाए। उसमें रमणीयता लाना चाहिए। प्रभावशाली बनाने के लिए कोशिश करेंगे तो उसमें कृत्रिमता आने की संभावना बढ़ेगी। ऐसे कृत्रिम कथोपकथन पाठक को ऊबा देता है। उपन्यासकार को यह ध्यान रखना होगा कि वास्तविक जीवन की बातचीत को एक नवीन रूप देकर प्रस्तुत करना चाहिए। लेकिन ऐसा करते वक्त इस बात का ध्यान रहे कि उसकी स्वाभाविकता नष्ट न हो जाए। सामान्य लोगों की बातचीत को भी इसप्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि पाठक को लगे कि उनमें नाटकीय गति, नाटकीय शक्ति आ जाने पर भी वह सहज, स्वाभाविक और युक्तिसंगत है।

निरर्थक कथोपकथन से लेखक को हमेशा बचके रहना चाहिए। चरित्रों के विकास के लिए और कथा की प्रगती के लिए ही कथोपकथन का लक्ष्य उपन्यास के अन्य अवयवों की तरह प्रभावोत्पत्ति ही रहना चाहिए।

---

1. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा - डॉ. माक्खनलाल शर्मा - पृ. 72

उपन्यास में पात्रों की बातचीत परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। पर ऐसे में उपन्यासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा परिवर्तन भी पात्रों के अनुरूप हो। कथोपकथन ऐसी होनी चाहिए कि उपन्यास पढ़नेवाले पाढ़क को उपन्यास के किसी भी अंग को पढ़कर यह मन में आये कि यह बातचीत अमुक-अमुक पात्र की बातचीत है।

'कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की तरह कथोपकथन की कुछ विशेषताएँ बताई जा सकती हैं, जिसका उपन्यास लेखक को विशेष ध्यान रखना पड़ता है। ये विशेषताएँ निम्न हैं - स्वाभाविकता, मार्मिकता, अनुकूलता, जीवंतता, संक्षिप्तता, पात्रानुकूलता, संबद्धता, सरसता, सोद्देश्यता आदि। एक सफल उपन्यास में उपर्युक्त विशेषताओं का संतुलित सहभाग होता है और ये विशेषताएँ उपन्यास में परस्परावलंबित रहती है।'[1]

देशकाल-वातावरण

देशकाल का बडा असर मनुष्य और कृति पर होता है। उपन्यास को सजीव और सुसंगत बनाने के लिए देशकाल का प्रयोग करते हैं। देशकाल के बिना पात्र का अस्तित्व नहीं रहेगा और उनमें मानवता की अनुरूपता न आ सकेगी। 'देशकाल के चित्रण का तात्पर्य यह है कि उपन्यास की घटनाएँ जिस स्थान और समय की हों उसका ज्यों-का-त्यों चित्र उपस्थित कर दिया जाए। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि उपन्यास में देशकाल का चित्रण करने के लिए भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का समग्र परिचय आवश्यक है, कला-विधान करनेवाली कल्पना-शक्ति इससे कम महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि इसके बिना भौगोलिक और सामाजिक अध्ययन का उचित उपयोग नहीं हो सकता और विवरणों में सरसता नहीं लाई जा सकती।'[2]

---

1. गिरिराज किशोर का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. सुरेश चंगदेव साळुके - पृ. 81
2. वही - पृ. 81

उपन्यास की योजना में सहायता देनेवाले सभी बाह्य उपकरण देश-काल के अंतर्गत आ जाते हैं, जैसे आचार-विचार, रीति-नीति, रहन-सहन, प्राकृतिक पीठिका और परिस्थिति आदि। देशकाल को हम दो भागों में वर्गीकरण कर सकते हैं - सामाजिक, भौतिक या प्राकृतिक।

देशकाल का सार्वाधिक महत्व ऐतिहासिक और आँचलिक उपन्यासों में है। आजकल तो आँचलिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। स्थानीय रंगों की इनमें प्रचुरता रहती है। 'ऐसे उपन्यास वातावरण की रंचमात्र भी उपेक्षा करके नहीं चल सकते। वातावरण के विषय में यह अत्यंत स्मरणीय है कि यह कथानक एवं चरित्र के प्रकाशन एवं स्पष्टीकरण का साधन मात्र है। अतः साधन कहीं साध्य न बन जाए, या साध्य के व्यक्तित्व को समन्तात् आच्छादित करके हीन एवं उपेक्ष्य न बना दे, इस मूल पकड का ध्यान स्रष्टा को आरंभ से ही होना चाहिए। वातावरण में देशकाल बाह्य है और मनोदशा आन्तरिक अतः दोनों ही प्रकारों की पूरी क्षमता कृतिकार में आवश्यक है। इस उभयपक्षीय पूर्ती द्वारा ही सच्चा एवं पूर्ण वातावरण तैयार होता है।'[1] वातावरण पात्रों की मानसिक एवं शारीरिक तैयारी में उष्णता और प्रवाह का संचार करने के साथ-साथ उपन्यास पढ़नेवाले पाठकों की भी मानसिक तैयारी में सहायक होती है। वातावरण की सृष्टि में सर्तकता रखनी चाहिए अन्यथा वह रचना के महत्व को ही नष्ट कर देगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ उपन्यासों में जीवन के सभी अंगों का वर्णन होता है। लेकिन अधिकतर उपन्यासों में एक या दो अंगों का ही वर्णन मिलता है। समाज का प्रतिरूप है उपन्यास इसलिए ही उपन्यास का संबन्ध समाज के उच्च, मध्य और निम्नवर्ग के साथ रहता है। इसलिए कुछ उपन्यासों में मज़दूरों और पूँजिपतियों को विषय बनायी जाता है तो कुछ में उद्योग-व्यवसाय आदि को विषय बनाते हैं। इस प्रकार मानव जीवन के हर

---

1. उपन्यास सिद्धान्त और संरचना - डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन - पृ. 24-25

अंग का चित्रण उपन्यास में होता है लेकिन इन सभी अंगों का चित्रण एक ही उपन्यास में मिलना मुश्किल है। ज्यादात्तर उपन्यास में जीवन के एक या दो अंगों के ही चित्रण मिलते हैं।

कथानक एवं चरित्र के अनुकूल ही वातावरण का प्रयोग करना चाहिए वरन् यह उपन्यास की निष्फलता का कारण बनेगी। इसे ध्यान में रखकर ही उपन्यासकार को उपन्यास लिखना चाहिए। उचित वातावरण के द्वारा कथानक में और भी आकर्षणीयता आ सकती है। इसके बदले खुशी के माहौल में दुःख का वातावरण और दुःख के अवसर पर खुशी का वातावरण का प्रयोग करेंगे तो उपन्यास में विरसता आ जायेगी।

उपन्यास में पात्रों को अधिक स्पष्टता देने तथा कहानी को अधिक मार्मिक बनाने एवं जगत और जीवन की विशालता का परिचय कराने के लिए भौतिक और प्राकृतिक संविधान का प्रयोग करते हैं। बाह्य चित्रण करते समय उपन्यासकार को ध्यान रखना चाहिए कि यह भी उसकी रचना का एक अंग बने। उपन्यासकार यह ध्यान रखे कि अपनी रचना के कथाप्रवाह को अवरुद्ध करनेवाला कोई भी वर्णन करे नहीं। वरन् वह कथा की स्वाभाविक गति में बाधा बन जायेगी।

'किसी स्थिति-विशेष का सफल अंकन न हो सकने के कारण कभी-कभी भावों की पूर्ण व्यंजना नहीं हो पाती और कोई अभाव-सा खटकता रहता है। सूक्ष्म निरीक्षण के छोटे-छोटे चमत्कार द्वारा ही इतनी शीघ्रता और पूर्णता के साथ वास्तविक जीवन का भ्रम उत्पन्न कराया जा सकता है। वातावरण के सफल तथा मनोरम चित्रण का कहानी के लिए बहुत मूल्य होता है। कभी-कभी सामान्य सडकों, गलियों तथा बरसात में टपकनेवाले घरों के वर्णन से भी कहानी में विलक्षण मनमोहकता आ जाती है।'[1] वातावरण के सफल चित्रण से कहानी में मनोहारिता आ जाती है। जैसे बरसात में सनी हुई सड़क, पौधा आदि के चित्रण से कहानी में सुन्दरता आ जाती है।

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 453-454

जो उपन्यासकार मानव भावनाओं के साथ प्रकृति का विरोध या साम्य का चित्रण अपनी रचनाओं में करता है वह भौतिक या प्राकृतिक दृश्य-विधान का सुंदर उपयोग करने में माहिर है। कभी-कभी उपन्यासकार मानव मन के उथल-पुथल के अनुसार प्रकृति का चित्रण करता है। हर्ष के समय प्रकृति का सुन्दर सुरम्य रूप का चित्रण करता है तो विषाद का दर्शाने के लिए प्रकृति के उदासीन रूप का चित्रण करता है। उपन्यासकार, मानव के मनोभावों के अनुसार प्रकृति के विविध रूप का चित्रण करके अपनी रचनाओं को और भी सुंदर बनाता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यह बाह्य दृश्य विधान कहानी में कई प्रकार से विशालता, गांभीर्य और सौन्दर्य उपस्थित कर सकता है। परन्तु इन बाह्य तत्वों को कहानी में सुरुचि और सुबुद्धि के साथ उपस्थित करने का विशेष ज्ञान सृष्टा को होनी चाहिए। अन्यथा उनका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं होगा। जब यह बाह्य दृश्य विधान कहानी के उद्देश्य के अधीत और गौण हो तभी यह सफल हो पायेगा।

शैली

उपन्यास को आकर्षक, मनोरंजक एवं सरल बनाने के लिए शैली तत्व का प्रयोग करते हैं। जिस ढंग से उपन्यासकार अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है, उसी को शैली कहतेहैं। बिना शैली के उपन्यास में पूर्णता नहीं आयेगी। उपन्यास में शैली का ऐसा प्रयोग करना चाहिए जिससे पाढक उसमें रम जाए और उपन्यासकार की भावनाओं को समझ पाये। शैली की सरलता, सुबोधता और प्रवाहपूर्णता जैसे गुण पाढक के रसास्वादन की क्षमता को बढ़ा देता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार से भी शैली को और आकर्षक बनाने में सहायक होते हैं।

प्रत्येक लेखक की शैलियाँ अलग-अलग होगी क्योंकि शैली व्यक्ति सापेक्ष है। कुछ उपन्यासकार आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास लिखते हैं तो कुछ पत्र शैली में, कुछ लोग डायरी शैली में, कुछ लोग चिट्ि्टयों के रूप में, कुछ कथोपकथन शैली में और कुछ लोग फ्लाष्बैक शैली में कहानी लिखते हैं। आत्मकथात्मक और डायरी शैली में नायक के सहारे कहानी आगे बढ़ती है। इसलिए कथागति को आगे बढ़ाने के लिए नई-नई घटनाओं का उल्लेख करना पड़ता है। लेकिन ऐसा करके पाठक की मेधा को संघर्ष में नहीं डालना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये घटनाएँ जायज हों। अर्थात् जिन घटनाओं का होना संभव भी नहीं है ऐसी घटनाओं का उल्लेख नहीं करना चाहिए। चिट्ि्टयाँ और कथोपकथन की शैली में लिखे गये उपन्यासों में लेखक को कुछ अधिक सुविधा प्राप्त होती है। लेकिन वहाँ भी बंधन होता है। उपन्यासकार का सर्वज्ञ बन जाना ही सबसे सहज शैली है। दुनिया के प्रमुख उपन्यासकारों ने ज्यादात्तर इस शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में पात्र के भीतर क्या हट रहा है, उसके संपर्क में आनेवाले क्या और कितना समझ रहे हैं, बाहर क्या हट रहा है, इत्यादि सभी बातें उपन्यासकार को मालूम पडता है। पर इस शैली का प्रयोग करना बहुत कठिन कार्य है। सबसे सहज शैली में औचित्य का निर्वाह करना उतना ही कठिन है।

उपन्यास को सफल बनाने में शैली की भूमिका बहुत बडा है। सब तरह से उपन्यास आकर्षक होने पर भी उसकी शैली में रोचकता नहीं हो तो पाठक को पढ़ते समय विरसता का अनुभव होगा। शैली में प्रवाहता होनी चाहिए तभी तो पाठक को पढ़ने में रुची होगी। उपन्यास में सभी तत्वों के उचित संतुलन से ही प्रवाहमयता कायम होगी।

उद्‌देश्य

उपन्यास का महत्वपूर्ण और अंतिम तत्व है उद्‌देश्य। 'प्राचीनकाल से आधुनिककाल तक साहित्य-सर्जन के पीछे कोई-न-कोई जीवनदर्शन या उद्‌देश्य रहा है। उपन्यास लिखने के अनेक उद्‌देश्य है। कोई लेखक सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखता है तो कोई मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने में लग जाता है। दार्शनिक तथा नैतिक मूल्यों को उजागर करने के साथ किसी अंचल-विशेष की संस्कृति को ध्यान में रखकर भी उपन्यास लिखे जाते हैं।'[1]

मनुष्य और उसका सामूहिक और सांस्कारिक नाते-रिश्ते उसकी मानसिक स्थिति यानी सुख, दुख, क्रोध, जीवन संघर्ष और उसका जयपराजय आदि उपन्यास सृष्टि के आधार बनते हैं। उपन्यासकार एक कलाकार है साथ ही एक सामाजिक प्राणी भी है। तभी तो वह बहुत निकटता से सामाजिक जीवन का निरीक्षण करता है। इसलिए जगत और जीवन के प्रति उसका अपना एक दृष्टिकोण होता है और यह दृष्टिकोण उसके पात्रों में समावेश होता है। इन सबके फलस्वरूप उसकी कृति में समाज में घटित यथार्थ घटनाएँ, मानव के मनोभावों का चित्रण, मानवीय जीवन की समस्यायें आदि का समाहार होता है जिसमें जगत के प्रति उसकी जो अपनी भावना होती है उसमें एक नवीन नैतिक मूल्य आ जाता है। यही उपन्यास का जीवन-दर्शन होता है यानी उद्‌देश्य होता है।

जीवन के प्रति उपन्यासकार की जो भावनाएँ है वे जाने या अनजाने में उनकी कृतियों में समाहित हो जाते हैं। ये भावनाएँ उसकी कला का आधार है। प्रतिदिन के मानव-व्यापार और क्रियाकलाप ही उसकी कला का आधार है। शिवनारायण श्रीवास्तव जी के अनुसार 'किसी भी बडे उपन्यास में केवल लेखक के मानव-जीवन संबन्धी

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक अध्ययन - अशोक के शाह 'प्रतीक' - पृ. 31

निरीक्षण मात्र होते हैं जिनमें सर्जन-शक्ति निहित होती है। इन्हीं निरीक्षणों का मनन तथा प्रतिपादन करके हमें एक नित्य सत्य का दर्शन होता है। उपन्यासों में जीवन-दर्शन का यही अर्थ है।'[1]

प्रारंभिक काल में सामान्यतः दो मूल उद्देश्यों से उपन्यास की रचना हुआ करती थी - पहला उपदेश की वृत्ति, जिसके अंतर्गत नैतिक शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया जाता था, और दूसरा केवल मनोरंजन के लिए लिखा जाता था। इस तरह के उपन्यास के आधार थे कौतूहल और कल्पना। इसका उद्देश्य पाठक का जी बहलाना मात्र था। पहले प्रकार के उपन्यास कुछ गंभीर होते थे। लेकिन आजकल की औपन्यासिक प्रवृत्ति में परिवर्तन आ रहा है। यही परिवर्तन उद्देश्य तत्व को भी प्रभावित करता है। आधुनिककाल के उपन्यासकारों के उपन्यासों में उद्देश्य तत्व को प्रमुखता दी जाती है। आज के उपन्यासकार के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, मनोरंजक इन सबके पीछे उसका कुछ न कुछ उद्देश्य ज़रूर रहता है। संक्षेप में कहे तो उपन्यास का स्वरूप कुछ न कुछ उद्देश्य से निर्धारित होता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि उपन्यास के सभी तत्व इतने मिले हुए है कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इन सब तत्वों का प्रभाव किस प्रकार पाठक के ऊपर पडता है उस प्रभाव के माप पर ही उपन्यास का महत्व निर्भर है। उस प्रभाव की अपेक्षा में ही उपन्यास के तत्वों का सफल निर्वाह हो सकता है।

2. साठोत्तरी उपन्यास

उपन्यास को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। किसी के अनुसार यह जीवन की एक चमकती हुई किताब है तो किसी की दृष्टि

---

1. हिन्दी उपन्यास - शिवनारायण श्रीवास्तव - पृ. 455

में राष्ट्रीय रूपक। दरअसल उपन्यास के संदर्भ में ये बातें उसके व्यापक फलक के कारण ही सामने आई है। उपन्यास-साहित्य का क्षेत्र काफी फैला हुआ होता है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है वह भले ही साहित्य की अन्य विधा की पकड से बच जाए लेकिन उपन्यास की नज़र से बचना मुश्किल है। यह जीवन की हल्की सी हल्की थरथराहट को भी महसूस कर लेता है। सामाजिक गतिविधियों पर उपन्यासकार एक सतर्क अन्वेषक की तरह अपनी कड़ी नज़र बनाए रखता है।

'उपन्यास' शब्द का अर्थ है वाक्योपक्रम, प्रस्ताव, भूमिका, उप-निकट, न्यास रखा हुआ आदि। यह साहित्य का वह अंग है जिसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक काल में हुआ है। डॉ. बच्चन सिंह हिन्दी भाषा के अंतर्गत 'उपन्यास' शब्द की प्रयुक्ति की समीक्षा इसप्रकार देते हैं - 'उपन्यास शब्द को अंग्रेज़ी 'नॉवल' के अर्थ में प्रयोग करनेवाला पहला व्यक्ति बालकृष्ण भट्ट है। हिन्दी प्रदीप की पुरानी फाइलों से पता लगता है कि उन्होंने छोटे-बडे नौ उपन्यासों की रचना की है। पहले उपन्यास का नाम 'उपन्यास' शब्द लिए हुए हैं - 'रहस्यकथा उपन्यास'। दूसरे उपन्यास का नाम है 'गुप्त तैरी उपन्यास'। ये दोनों अधूरे हैं। पर उनके अंशों को हिन्दी प्रदीप नवम्बर (1879) और हिन्दी प्रदीप (मई, 1882) में देखा जा सकता है। 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886) की भूमिका में उन्होंने लिखा है, यह उपन्यास सन् 1886 की 'हिन्दी प्रदीप' की जिल्दो के कुछ अंकों में से या 4 या 5 अध्याय निकालकर पुस्तकाकार छाप कर उस समय के ग्राहकों को उपहार में बाँटा गया था। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' (1890) के उपोद्धात में उपन्यास शब्द का प्रयोग किया है। सन् 1903 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'माधुरी' में उपन्यास पर एक लेख लिखा।'[1]

---

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द - बच्चन सिंह - पृ. 32

उपन्यास का विकास भी आधुनिक साहित्य के अन्य अंगों की तरह अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव और संपर्क से हुआ है। यूरोप में रोमांटिक कथा साहित्य से उपन्यास का विकास हुआ। यूरोप का रोमांटिक कथा साहित्य भारतीय प्रेमख्यान अरबों के माध्यम से विश्व-यात्रा के समय उनसे निश्चित रूप में प्रभावित हुआ होगा। इस प्रकार भारतीय कथा साहित्य अपने कुछ रूप परिणाम के बाद उपन्यास के रूप में पुनः भारत लौट आई।

19वीं शती में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव से ही हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव और विकास हुआ था। अंग्रेज़ी संपर्क में भारत के जो प्रदेश पहले आए, उपन्यासों का प्रचलन उनमें अपेक्षाकृत कुछ पहले हुआ। इसलिए हिन्दी से पहले बंगला में उपन्यासों की रचना प्रारंभ हुई। यानी बंगला के अनेक लेखकों का प्रभाव हिन्दी उपन्यास साहित्य पर पड़ा।

हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह उपन्यास का उद्‌भव भी भारतेन्दु काल में ही हुआ। जैसे ऊपर कहा गया है कि उपन्यास का प्रारंभ बंगला साहित्य में हुआ था बाद में हिन्दी साहित्य में हुआ। इसलिए भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में उपन्यास के प्रोत्साहन के लिए बंगला उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किया। और खुद एक उपन्यास लिखने का प्रारंभ भी किया जिसका नाम है 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। लेकिन इसका केवल दो पृष्ट ही प्रकाश में आ सका। फिर भी भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में उपन्यास के लिए एक पृष्ठभूमि अवश्य प्रस्तुत किया। उन्होंने देशी और विदेशी भाषा के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। इससे हिन्दी लेखक इस साहित्य रूप की ओर आकृष्ट हुए और हिन्दी में भी उपन्यासों की रचना होने लगी। उस समय के उपन्यास साहित्य में दो प्रकार के उपन्यास मिलते हैं। वे है शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास तथा सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यास। तिलस्मी-ऐय्यारी और जासूसी उपन्यास मनोरंजन प्रधान उपन्यास के अंतर्गत आते हैं। पाठक का मनोरंजन ही इसका प्रधान उद्‌देश्य है। इसप्रकार

के उपन्यासों के प्रमुख प्रवृत्तक है देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी। दूसरे वर्ग के अंतर्गत सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास आते है। इस प्रकार के उपन्यास का उद्देश्य सामाजिक सुधार रहा। इसके प्रवृत्तक किशोरीलाल गोस्वामी है। इसके अलावा इस युग में बालकृष्ण भट्ट। राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि उपन्यासकार भी रहे।

मुंशी प्रेमचंद का आगमन हिन्दी के उपन्यास साहित्य की एक महान घटना है। उनके आगमन से उपन्यास साहित्य जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन बन गया। इस समय के उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों को खासकर निम्नवर्ग के जीवन, उनकी समस्याएँ, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा समस्या, वेश्या-वृत्ति, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा साहित्यिक समस्याओं का यथार्थ एवं प्रामाणिक अंकन किया गया। इस युग के प्रमुख उपन्यासकार है जयशंकर प्रसाद। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', प्रतापनारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी आदि।

समकालीन हिन्दी साहित्य में साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों का विशेष महत्व है। साठोत्तर उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा प्रदान किया। उन्होंने सामाजिक जीवन के कई अनछुए पहलुओं को अपने रचनाओं में चित्रित किया है। साठोत्तरी उपन्यास प्रेमचंदोत्तर काल में आता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों का प्रमुख स्थान है। 'इसका कालखंड सन् 1961 से आज तक माना जाता है। बीसवीं शति के अंतिम चार दशक दो सहस्राब्दियों के अंतिम चरण है। इन अंतिम चार दशकों में अर्थात् सन् 1960 के बाद राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक घटनाएँ घटित हुई, जिनमें भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध, पंडित नेहरु, लाल बहादुर शास्त्री तथा इंदिरा गाँधी की मृत्यु, कांग्रेस का विभाजन, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भारत का विभाजन, शरणार्थियों की समस्या, स्वतंत्र बंगला देश की स्थापना, अणु विस्फोट, आपत्कालीन स्थिति, कांग्रेस-कांग्रेसेतर सरकारों का शासनकाल, कश्मीर समस्या,

पडोसी राष्ट्रों से तनावपूर्ण संबन्ध, बढ़ती हुई महानगरीय समस्याएँ, स्त्री शिक्षा, परिवर्तित नारी जीवन, बढ़ता हुआ पाश्चात्य संपर्क एवं उनका प्रभाव आदि प्रमुख हैं। जिससे देश की समसामायिक सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ काफी मात्रा में प्रभावित हुई। परिणामस्वरूप देश में राजनीतिक बुराईयाँ नेताओं की करनी-कथनी में अंतर, बढ़ती हुई औध्योगिकता - यांत्रिकता के कारण महानगरों का शोरशराबा, उसकी जटिलता, सरकारी दफ्तरों में फैला भ्रष्टाचार, युवा पीढ़ी की दिशाहीनता, बढ़ती हुई जनसंख्या, महँगाई, बेकारी, काला बाज़ार, गरीबों का शोषण, व्यक्ति का अकेलापन, स्त्री शिक्षा के कारण उनकी आत्मनिर्भरता, स्वच्छंद यौन चेतना, नारी मुक्ति, नैतिक मूल्यों का विघटन जीवन-मूल्यों में आया अभूतपूर्व परिवर्तन, बदलते नर-नारी संबन्ध, आधुनिकता का बोध, पुरानी नई-पीढ़ी के बीच संघर्ष आदि कई स्थितियों ने समस्त मानव जीवन को अधिक जटिल बनाया। इसकी सही पहचान हमें साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों से हो सकती है।'[1] साठोत्तर काल में समाज में कई प्रकार की घटनाएँ घटित हुई, कई प्रकार के परिवर्तन समाज में आये। इन सबकी झलक उस समय के साहित्य में भी दिखाई पड़ता है। क्योंकि समाज से प्रभावित होकर ही साहित्यकार अपनी साहित्य का सृजन करता है।

सन् 1960 के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा मिली। उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प में भी नये-नये प्रयोग होने लगे। डॉ. टी. मोहन सिंह के शब्दों में - "सन् 1961 से लिखे जानेवाले इन नये उपन्यासों की जीवन संवेदना भिन्न कोटि की सूक्ष्मतर और व्यापक है। उपन्यास की परंपरागत रूढियों और शिल्प प्रवृत्तियों से मुक्त होकर नये शिल्प का प्रस्तुतीकरण आग्रहपूर्वक करनेवाले ये उपन्यास आधुनिक जीवन में व्याप्त असंगति, अनास्था, अंतर्विरोध, मृत्युबोध, तनाव, अकेलापन और अजनबीपन की

---

1. गिरिराज किशोर का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. सुरेश चांगादेव साळुके - पृ. 63

अनुभूति, मूल्यों का विघटन, प्राचीन और नवीन का संघर्ष, व्यक्ति, परिवार एवं समाज की टूटन, यौन कुंठाओं और काम वासनाओं की अभुक्त एवं निस्संकोच अभिव्यक्ति आदि प्रवृत्तियों से प्रभावित है।"[1]

हिन्दी के समकालीन उपन्यासकारों ने अपने भोगे हुए यथार्थ को ही नहीं अपितु समाज के उपेक्षित, शोषित, आदिवासी, दलित आदि लोगों के जीवन का चित्रण भी किया है। यही नहीं उन्होंने शहरीकरण जैसी भारतीय जनजीवन की प्रमुख समस्याओं का चित्रण भी किया है। शहरीकरण के कारण गाँव के लोग गाँव छोडकर शहर की ओर पालायन कर रही है। गाँव उजड़ रहे हैं। 'वैश्वीकरण के युग में औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, निजीकरण, आर्थिक उदारीकरण के चलते विकास के नाम पर हो रहे विनाश एवं विस्थापन के कारण ग्रामांचल एवं वनांचल आदि के जनजीवन की नई समस्याओं का अंकन भी साठोत्तर कालीन उपन्यासों में हुआ है।'[2]

अतः यह कहा जा सकता है कि साठोत्तरी युग परिवर्तन का युग है, नई प्रवृत्तियों का युग है। सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल का युग है।

1.1 आधुनिकता बोध

साठोत्तरकाल काल के उपन्यास साहित्य की प्रमुख विशेषता है आधुनिकता बोध। आधुनिक युग के परिवर्तित संवेदना के कारण 1960 के बाद आधुनिकता बोध का एहसास होने लगा। 'अपने युग की वैज्ञानिक, सामाजिक एवं वैचारिक उपलब्धियों को समझना, उनको वाणी देना और उनके साथ जीना आधुनिकता बोध है।'[3] आधुनिकता में

---

1. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास प्रतिपाद्य और शिल्प - डॉ. टी. मोहनसिंह (प्राक्कथन से)
2. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 81
3. गिरिराज किशोर का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. सुरेश चांगदेव सांजुके - पृ. 64

अर्थहीन परंपरा का कोई स्थान नहीं है। किसी भी अज्ञात कार्य का अंधानुकरण इसमें नहीं होता। यह देशकाल सापेक्ष होता है। यह समकालीन बोध और वास्तविकता एवं युग सापेक्ष नैतिकता को भी स्वीकारता है। इस तरह के आधुनिकतावादी विचारधारा में लिखे गये कई उपन्यास है। इनमें प्रमुख है - ममता कालिया के 'बेघर', मोहन राकेश कृत 'अंतराल', अज्ञेय के 'अपने-अपने अजनबी', निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई', शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अलग वैतरणी', रमेश बक्षी के जलता हुआ लावा', उषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका', मन्नु भंडारी के 'आपका बंटी', श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार', गिरिराज किशोर के यात्राएँ, नरेश मेहता कृत 'वह पथ बंधु था' आदि।

1.2 संबन्धों का विघटन

आज का युग यांत्रिक युग है। यंत्रों ने तो रिश्ते को भी अपने कब्जे में कर लिया है। इससे मानव का जीवन अधिक निराशा एवं कुंठाग्रस्त हो गया है। इसके कारण पारिवारिक संबन्धों में बदलाव आ गया है। सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार पारिवारिक संबन्ध है। पारिवारिक संबन्ध के बिना समाज का कोई अस्तित्व नहीं है। आज के युग में परंपरागत मूल्यों का विनाश हो रहा है और नई मूल्यों को स्वीकारने में हम हिचकते है। आधुनिक युग में सामाजिक जीवन मूल्यों का विघटन हो रहा है। औद्योगीकरण और यांत्रिकी की प्रभाव के कारण मानवीय संबन्धों में तनाव पैदा हो गयी है। आज के परिवर्तनशील युग में सामाजिक जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आना सहज एवं स्वाभाविक है। समाज में संबन्धों का विघटन एवं मूल्यों के संघर्ष का यह चित्रण साठोत्तरकालीन उपन्यासों में देख सकते हैं।

आज के युवापीढ़ी आदर्श एवं उदात्त जीवन मूल्यों को स्वीकार करने के बजाय विघटित एवं परिवर्तित जीवन मूल्यों को अपना रहे हैं। परिणामस्वरूप वह दिशाहीन हो गया। अकेलापन का एहसास और निराशा से वह अंदर ही अंदर घुट-घुटकर मर रहे हैं। इन विघटित जीवन मूल्यों और संबन्धों को लेकर साठोत्तरी उपन्यासकारों ने अनेक उपन्यास लिखे। जिनमें प्रमुख है - नरेन्द्र कोहली का 'संघर्ष की ओर', कमलेश्वर का 'काली आँधी', भीमसेन त्यागी का 'नंगा शहर', मेहरुन्निसा परवेज़ का 'उसका घर', भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'पुष्पगंध', मोहन राकेश का 'अंतराल' कांता भारती का 'रेत की मछली' आदि।

1.3 दाम्पत्य संबन्धों का विघटन

दाम्पत्य जीवन एक ऐसा पवित्र बंधन है जिसमें त्याग और समर्पण का भाव होता है। विवाह बंधन केवल काम या वासना पूर्ती का साधन नहीं है अपितु यह पति-पत्नी के बीच विश्वास की कड़ी का काम करता है। दाम्पत्य जीवन रूपी रथ के दो पहिये है पति और पत्नी जिनमें से एक के बिना ये रथ आगे नहीं बढ सकता।

आधुनिक युग में मानवीय संबन्धों में परिवर्तन आने लगे। और इनका प्रभाव दाम्पत्य जीवन में भी होने लगा। नारियाँ स्वावलंबी हो गई तथा आर्थिक दृष्टि से वह आत्मनिर्भर होने लगी। दाम्पत्य संबन्धों का विघटन का प्रभाव केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं बल्कि पूरी परिवार पर इसका असर पड़ता है।

मेहरुन्निसाजी ने अपने उपन्यास 'अकेला पलाश' में ऐसा ही एक दाम्पत्य विघटन का चित्र प्रस्तुत किया है। उस उपन्यास की नायिका तहमीना एक कामकाजी औरत है। लेकिन तहमीना की पति जमशेद को उनकी बाहर जाकर नौकरी करना अच्छी नहीं लगती। परिणामस्वरूप दोनों के दाम्पत्य जीवन में तनाव पैदा होता है।

साठोत्तरयुग में दाम्पत्य संबन्धों को केन्द्र बनाकर लिखे उपन्यासों में प्रमुख है - मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे', विष्णुप्रभाकर के 'दर्पण का व्यक्ति', श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार', कमलेश्वर कृत 'बीच का समय', नासिरा शर्मा के 'शाल्मली', चित्रा मुद्गल कृत 'एक जमीन अपनी', भगवतीचरण वर्मा के 'रेखा' आदि उल्लेखनीय है।

1.4 राजनीतिक यथार्थ

साठोत्तरी जनजीवन को सबसे ज़्यादा प्रभावित करनेवाली प्रवृत्ति है युगीन राजनीति। सामाजिक जीवन में सभी व्यक्ति राजनीति के प्रभाव से प्रभावित होंगे।

'हिन्दी उपन्यास यात्रा ने स्वतंत्रता के उपरांत एक नया मोड ले लिया था। भारतीय जनता को जो रक्तरंजित स्वाधीनता प्राप्त हुई थी, उसने मानव-मूल्यों के प्रति जनता में एक तरह से अविश्वास पैदा कर दिया था। लोगों में घोर निराशा छा गयी थी, उनकी आशाएँ एवं आकांक्षाएँ धूमिल हो गई थी। उनके सारे सपने ध्वस्त हो गए थे। आम आदमी को अपने अधिकारों से वंचित कर दिया गया और देश की सत्ता कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में चली गयी। प्रजातंत्र के नाम पर प्रजा का ही शोषण होने लगा और देश का गरीब अधिक से अधिक गरीब होता चला गया एवं श्रीमत अधिकाधिक धनवान होता चला गया।"[1]

आज़ादी के बाद भी देश के गरीब जनता के समस्याएँ बढ़ती ही गयी। इन स्थितियों का मार्मिक चित्रण साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में किया है। समकालीन रचनाकारों ने अपने रचनाओं द्वारा सामाजिक - राजनैतिक भ्रष्टाचार, समाज में व्याप्त अत्याचा आदि के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। साठोत्तरी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं को ही नहीं मानव मन की गहराईयों का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड़ - पृ. 87

साठोत्तरकालीन राजनैतिक स्थिति का चित्रण इन युगीन उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। भारतीय राजनीति में हो रहे उथल-पुथल, नेताओं की गुटबंदी, अनाचार और स्वार्थ आदि का चित्रण साठोत्तरी उपन्यासकारों ने अपने रचनाओं में चित्रित किया है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय कुछ उपन्यास हैं - जैनेन्द्र कृत 'मुक्तिबोध', राही मासूम रज़ा के 'ओस की बूँद', शिवप्रसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी', रामदरश मिश्र की 'जल टूटता हुआ', नरेश मेहता की 'यह पथ बंधु था', भैरव प्रसाद गुप्त की 'धरती', श्रीलाल शुक्ल की 'रागदरबारी', भगवान सिंह की 'अपने-अपने राम', फणीश्वरनाथ रेणु के 'जुलूस', कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान', 'रेगिस्तान' और 'उन्माद', नागार्जुन के 'उग्रतारा', चित्रा मुद्गल के 'आवाँ' आदि।

1.5 आर्थिक समस्याएँ

आधुनिक समाज के सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है अर्थ। प्रत्येक देश की विकास की मूलाधार अर्थ ही है। देश की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन को संचालित करने में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक अभाव के कारण मनुष्य का जीवन बिखर जाता है। क्योंकि मनुष्य के सभी कार्य अर्थ पर निर्भर रहती है। जैसे - शिक्षा, अधिकार, संस्कार, चेतना आदि। अर्थ के अभाव में समाज में कई प्रकार के बुराईयाँ जन्म लेते है जैसे - चोरी, भ्रष्टाचार, पूँजीवाद, कालाबाज़ार, वर्ग-संघर्ष आदि। ये समाज के लिए अहित है। आर्थिक विषमता पारिवारिक संबन्धों में भी दराल डालता है।

साठोत्तरी रचनाकारों ने समाज में व्याप्त इस आर्थिक विपन्नता का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। पूँजीवाद के प्रति विरोध का स्वर उनके रचनाओं में मुखर हो उठती है। साठोत्तरी उपन्यासकारों में बहुत ही कम लोग होगे जो इस आर्थिक विसंगती और शोषण का विचार न किया हो। विवेच्य उपन्यासकारों ने आर्थिक विषमता और

शोषण का चित्रण अपने-अपने ढंग से उनके रचनाओं में चित्रित किया है। इस प्रकार के उपन्यासों में प्रमुख हैं - गिरिधर गोपाल की 'कंदील और कुहासे', मोहन राकेश की 'अंधेरे बंद कमरे', अमृतलाल नागर की 'अमृत और विष', डॉ. राही मासूम रजा की संतुलन रामदरश मिश्र की 'जल टूटता हुआ', मायानंद मिश्र की 'माटी के लोग सोने की नैया', कमलेश्वर की 'डाक बंगला', गिरिराज किशोर की 'चिडिया घर', उपेन्द्रनाथ अश्क की 'शहर में घूमता आईना', रंगेय राघव की 'आखिरी आवाज' आदि।

1.6 मध्यवर्गीय जीवन

'पहले समाज दो ही वर्गों में विभाजित था - एक उच्चवर्ग और दूसरा निम्नवर्ग। परंतु कालांतर में सामंतवाद का पतन और पूँजीवादी व्यवस्था के उदय के कारण धीरे-धीरे समाज में एक तीसरे वर्ग ने जन्म लिया और निश्चित है कि यह तीसरा वर्ग, वर्ग संघर्ष की देन है, जिसे कार्ल मार्क्स ने 'मध्यवर्ग' नाम दिया।'[1]

जो उच्चवर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच होते है वे सभी लोग मध्यवर्ग के अंतर्गत आ जाते हैं। जैसे किसान, साधारण व्यापारी लोग, क्लर्क, शिक्षक आदि। मध्यवर्ग का स्थान पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग के बीच होते हैं। इसका एक छोर उच्चवर्ग के निकट है तो दूसरा छोर निम्नवर्ग के निकट है। ये लोग अधिक पैसेवाले भी नहीं है और न अधिक गरीब भी।

मध्यवर्ग आधुनिकता का अंधानुकरण करते हैं। वे उच्चवर्ग के जीवन-शैली को अपनाने की कोशिश करते हैं। इसके लिए वे कर्जा लेते हैं। फलस्वरूप यह होता है कि वे कर्जा में डूब जाते हैं। और मानसिक तनाव में आगे की जिन्दगी जीना पडता है।

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 96

'सन् 1960 के बाद के उपन्यासकारों ने समाज में गिरते हुए मूल्यों के शिकार मध्यवर्ग का चित्रण विशेष रूप से किया है। अतः मध्यवर्ग की आकांक्षाएँ स्वप्न मात्र सिद्ध हुई। जिसके कारण उनमें कुंठा, असंतोष, आक्रोश, विवशता, घृटन एवं नैराश्य की प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी। ऐसी स्थिति में उनके सामने अनेक प्रश्न उत्पन्न हुए जिनका कोई हल नहीं था।"[1]

साठोत्तरी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अधिकांश मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण किया है। मध्यवर्गीय जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में उखेरा गया है। इस प्रकार के उपन्यासों में प्रमुख है - उपेन्द्रनाथ अश्क के 'शहर में घूमता आईना', मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे', नरेश मेहता के 'यह पथ बंधु था', भीष्म साहनी के 'कडियाँ', श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार', उषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका', लक्ष्मीकांत वर्मा के 'एक कटी हुई जिन्दगी', शानी के 'काला जल', भगवतीचरण वर्मा के 'थके पाँव', सुरेश सिन्हा के 'सुबह अंधेरे पथ पर', सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चांद चाहिए', राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश', चन्द्रकांता के 'बाकी सब खैरियत है'। चित्रा मुद्गल के 'आवाँ', प्रकाश मनु के 'कथा सर्कस' आदि उल्लेखनीय है।

1.7 गाँव एवं आंचलिक जीवन

भारत में ज्यादान्तर लोग गाँव में रहनेवाले हैं। उनका जीविकोपार्जन कृषि है। तभी तो भारत को किसानों का देश कहा जाता है। साठोत्तर हिन्दी उपन्यास की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है आँचलिकता। जिसमें किसी विशिष्ट अंचल, जनपद या जाति के समस्त जीवन का विस्तृत अंकन करता है।

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 97

'अंचल विशेष के जन-जीवन और जन-संस्कृति को यथार्थ रूप में चित्रित करने की विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति को ही 'आँचिकता' कहा जाता है। जिसमें प्रदेश विशेष की बोली, भाषा, संस्कृति, उत्सव, विवाह, लोकगीत, आचार-विचार, लोककथाओं, विश्वासों, मान्यताओं, धर्म, किंवदंतियों एवं समस्याओं अर्थात् संपूर्ण जीवन का उद्‌घाटन होता है।'[1]

हिन्दी उपन्यास साहित्य के पहला आँचलिक उपन्यास है फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल'। आँचलिकता की चर्चा हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'मैला आँचल' के साथ ही आरंभ हुआ। 'मैला आँचल' उपन्यास में रेणु ने 'मेरीगंज' गाँव का चित्रण किया है।

भारतीय ग्रामीण सभ्यता के आधार स्तंभ है आँचलिक उपन्यास। इसमें अंचल निवासियों की भाषा, आचार-विचार, संस्कृति आदि का निरूपण होता है। समकालीन उपन्यासकार गाँव और अंचल की समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाते हैं।

'साठोत्तरकालीन उपन्यासों में भारतीय जीवन के उपेक्षित नगर, कस्बा, गाँव एवं अंचल के जीवन की विभिन्न समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया गया है। ग्रामांचल जीवन में आधुनिकता बोध के कारण मूल्यों में आम परिवर्तन को विशेष रूप से दर्शाया गया है।'[2]

साठोत्तरकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन को प्रमुखता देकर उनकी सामाजिक-राजनैतिक आर्थिक समस्याओं एवं उनके संस्कृति को पाढक के समक्ष रखने की कोशिश किया है। इसप्रकार आंचलिक जीवन को कथ्य बनाकर लिखे गये उपन्यासों में प्रमुख है - फणीश्वरनाथ रेणु के 'परती : परिकथा', राजदरश मिश्र के

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 99
2. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 100

'जल टूटता हुआ', डॉ. राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', डॉ. शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अलग वैतरणी', श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी', विवेकी राय के 'बबूल', 'सोना माटी', इलाचंद्रजोशी के 'ऋतुचक्र', मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम', जगदीशचन्द्र के 'धरती धन न अपना' आदि।

1.8 नारी विमर्श

आदिकाल से ही नारी का शोषण होता आ रहा है। पुरुषाधीन समाज में उसका कोई वजूद नहीं है। उसे सिर्फ वासनापूर्ती के साधन के रूप में देखा जाता रहा है। लेकिन आगे जाकर इस स्थिति में परिवर्तन आया। 'जब शिक्षा के प्रचार-प्रसार के चलते स्वावलंबी होकर स्वयं की शोषित स्थिति के साक्षात्कार के परिणामस्वरूप नारी में 'स्व' विषयक जागृति का उदय हुआ तो वह स्वयं के तथाकथित निष्क्रिय जीवन की सक्रिय भूमिका के प्रति प्रतिबद्ध हो गयी। संवेदनशील पुरुष वर्ग का भी सहयोग प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे 'नारी विमर्श' ने विश्व के विचार संसार में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है, जो आज हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में सबसे अधिक विमर्श का विषय बना हुआ है।'[1]

शिक्षा की प्रचार-प्रसार से नारी चेतना में विकास हुए इसका परिवर्तन समाज में भी परिलक्षित हुए। प्रेमचंद युग से ही उपन्यासों में नारी चेतना का चित्रण देखने को मिलते हैं। लेकिन साठोत्तरकाल में आते ही साहित्य में नारी चेतना का प्रयोग बढ़ने लगा। यह प्रवृत्ति आज के महिला उपन्यासकारों के कृतियों में भी देख सकते हैं। महिला उपन्यासकारों ने अपने रचनाओं में नारी के दयनीय स्थिति का चित्रण करने के साथ-साथ उनकी त्याग और बलिदान का देखे और भोगे हुए यथार्थ का भी चित्रण किया है। इन

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 103-104

महिला उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य है नारी जीवन में सुधार लाना। साठोत्तरकाल का महिला उपन्यासकारों ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर उपन्यास लिखते थे। इसलिए कहा जा सकता है कि आज का नारी लेखन अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली है। आज के हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श को इतना विशिष्ट स्थान मिलने का कारण ही ये महिला लेखिकाएँ है।

साठोत्तर युग के पहले भी हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श का प्रयोग हुआ था फिर भी साठोत्तरयुग में आते ही नारी विमर्श अधिक प्रखरता के साथ सामने आता है। उषा प्रियंवदा, मन्नु भण्डारी, कृष्णा सोबती आदि लेखिकाओं का चिन्तन उनके कथा साहित्य को हिन्दी साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया। इसके बाद आये प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, चित्रा मुद्गल, शुभा वर्मा आदि लेखिकाओं ने उपन्यास और कहानियों के साथ-साथ चिन्तनपरक ग्रन्थ भी लिखे। और नारी विमर्श को सार्थकता प्रदान की।

साठोत्तरी उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाने में महिला उपन्यास साहित्यकारों का योगदान महत्वपूर्ण है। इस युग में नारी जीवन की समस्याएँ और उनकी मनस्थितियों को विषय बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गये। नारी समस्याएँ और नारी-उत्थान आदि को केन्द्र में रखकर लिखे गये उपन्यासों में प्रमुख है - उषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका', राजेन्द्र यादव के 'अनदेखे अनजान पुल', शुभा वर्मा के 'एक औरत की ज़िंदगी', अमरकांत के 'दीवार और आँगन', शिवानी के 'चौदह फेरे', शशिप्रभा शास्त्री के 'वीरान रास्ते' और 'झरना', आनंद शंकर माधवन के 'प्रसव वेदना', राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव', श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी', मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब', मेहरुन्निसा परवेज के 'अकेला पलाश', सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चांद चाहिए', कृष्ण बलदेव वैद के 'नर नारी', निरुपमा सेवती के 'बँटता हुआ आदमी' आदि।

1.9 मनोवैज्ञानिक संदर्भ

आधुनिक युग में मनोविज्ञान जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है। मन के अनुसार ही मानव जीवन के प्रत्येक कार्य होता है। 'मनोविज्ञान मानव जीवन की संवेदना का अंकन चेतना पट पर प्रस्तुत करता है। मनुष्य के मन में उत्पन्न जीवन के विविध विकृतियों, रहस्यमयी वृत्तियों, मनोग्रंथियों, विसंगतियों, घात-प्रतिघातों, आंतरिक चेतना तथा व्यक्ति के व्यवहारों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। मानव के मन में छिपी ये प्रवृत्तियाँ सदैव कुछ नया रूप लेकर कार्य करती है। इनमें काम, अर्थ, भय एवं अहं मुख्य हैं।'[1]

हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद युग से ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरंभ हुआ। जैनेन्द्र एवं इलाचंद्र जोशी ने ही मनोविश्लेषणात्मक एवं मनोविज्ञानपरक उपन्यास लिखना आरंभ किया था। जो आगे बढ़कर मानव जीवन पर प्रभाव डालनेवाले एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभर आया। यह मनुष्य के विचारधारा में नये परिवर्तन लाया। और मानव को नये ढ़ंग से सोचने और समझने पर मज़बूर किया। यह प्रवृत्ति साठोत्तरकालीन उपन्यासों में ज्यादात्तर देखने को मिलते हैं। अतः मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति साठोत्तरी उपन्यासों की मूल में युग चेतना के रूप में विकसित होती दिखाई देती है।

'आरंभ में मनोविज्ञान एक शास्त्र के रूप में ही कथानक का आधार बना। लेकिन धीरे-धीरे रचनाकारों ने यह पहचाना कि मनोविज्ञान को शास्त्र से नहीं बल्कि जीवन व्यवहार से उपजना चाहिए। जिन मनोविज्ञानविदों का डंका बजता था वे द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव से रुग्ण हो गए सैनिकों की चिकित्सा करते थे और इस प्रकार देखें तो उनका समस्त मनोविज्ञान रोगियों का मनोविज्ञान था। चाहे फ्रायड हो या एड्लर सबके सब मूलतः चिकित्सक थे।'[3]

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 112
2. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 113

साठोत्तरकालीन उपन्यासकारों ने मानव मन की समस्याएँ, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों, उसके मन में छिपे हुए कामनाओं एवं पशुवृत्तियों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। इस प्रकार के उपन्यासों में प्रमुख हैं - अज्ञेय के 'अपने-अपने अजनबी', राजेन्द्र यादव के 'अनदेखे अनजान पुल', मोहन राकेश के 'अँधेरे बंद कमरे' लक्ष्मीकान्त वर्मा के 'कोयला और आकृतियाँ', निर्मल वर्मा के 'डार्क रूम', भगवतीचरण वर्मा के 'रेखा', गिरिराज किशोर के 'यात्राएँ', लक्ष्मीकांत वर्मा के 'शहर में घूमता आईना', कमलेश्वर के 'डाक बंगला' आदि।

1.10 दलित विमर्श

'दलित' का शाब्दिक अर्थ हुआ कुचला या रौदा हुआ। अतः दलितवर्ग का सामाजिक संदर्भ में अर्थ होगा समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो अथवा दुःखी हो और जिसे उच्चवर्ग के लोग उठने न देते हों - (डिप्रेस्ड क्लास) अर्थात् समाज की उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया, मसला गया या रौंदा गया हो। दलित शब्द आज व्यापक रूप में पीडित के अर्थ में प्रयुक्त होता है। परंतु दलितवर्ग का प्रयोग हिन्दु समाज व्यवस्था के अंतर्गत आज विशेषकर अछूत या हरिजन के लिए रूढ़िगत हो गया है।'[1]

हिन्दी साहित्य में सन् 1914 में 'सरस्वती पत्रिका' में प्रकाशित 'हीरा डोम' की 'अछूत की शिकायत' नाम के कविता से दलित साहित्य का आरंभ हुआ था। आज हिन्दी साहित्य में, दलित साहित्य एक नयी दिशा की ओर मुड रही है। जिसमें कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विधाएँ मौजूद है।

आज हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभर आया है। प्रेमचंद, अमृतलाल नागर तथा गिरिराज किशोर आदि साहित्यकारों के रचनाओं में दलित जीवन का चित्रण मिलता है।

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन - डॉ. श्यामराव राठोड - पृ. 108

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में जगदीशचंद्र के 'धरती थन न अपना' नामक दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यास में लेखक ने चमारों के जीवन का करुण यथार्थ को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह हिन्दी के पहला दलित उपन्यास माना जाता है। हरिजनों पर होनेवाले अत्याचार, अपमान एवं आर्थिक विषमता का चित्रण इसमें किया गया है। दलित जीवन पर आधारित अन्य उपन्यास है - मदन दीक्षित के 'मोरी की ईंट', अमृतलाल नागर के 'नाच्यों बहुत गोपाल', जय प्रकाश कर्दम के 'छप्पर', सत्य प्रकाश के 'जस तस भई सवेर', गिरिराज किशोर के 'यथा प्रस्तावित', शैलेश मटियानी के 'सर्प गंधा', शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अलग वैतरणी', ओमप्रकाश वाल्मिकी की 'जूठन', रामदरश मिश्र के 'जल टूटना हुआ', और 'सुरवता हुआ तालाब', सुबोध कुमार श्रीवास्तव की 'हीरा परा बाज़ार में' आदि उल्लेखनीय है।

साठोत्तरी रचनाकारों ने आधुनिक जीवन की विरूपताओं और विसंगतियों को वैयक्तिक स्तर पर भोगा है और उसे कलागत निरपेक्षता एवं निर्ममता के साथ अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। साठोत्तरी उपन्यास मानव के अंदर और बाहर के मनोभावों को उजागर करते हैं। इसलिए कह सकते हैं कि उपन्यास साहित्य आधुनिक विचारधारा से संबन्धित है।

1.2 साठोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकार

1.2.1 जैनेन्द्र

जैनेन्द्र साठोत्तरकाल के आरंभिक उपन्यासकारों में एक है। वे हिन्दी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवृत्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संगठनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया है। जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिये हुए होते हैं। उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों

के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन उन्होंने किया है। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुज़रे हैं। उनके 'अनन्तर' (1968), अनाम स्वामी (1971), दर्शक आदि उपन्यास साठोत्तरी उपन्यासों में प्रमुख हैं।

1.2.3 भगवतीचरण वर्मा

साठोत्तर उपन्यासकार के रूप में भगवतीचरण वर्मा (1903-1981) का भी उल्लेखनीय स्थान है। प्रारंभ में वे कविता के क्षेत्र में विख्यात थे बाद में उपन्यासकार बने। उनकी प्रसिद्ध उपन्यास है 'चित्रलेखा' (1934)। उसकी 'भूले बिसरे चित्र' नामक उपन्यास को 1961 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ और इसी उपन्यास के लिए भगवतीचरण वर्मा को 1971 में 'पत्मभूषण' से सम्मानित किया गया। उनके प्रकाशित उपन्यास है - 'वह फिर नहीं आई' (1960), 'सामर्त्थ और सीमा' (1962), 'थके पाँव' (1963), 'प्रश्न और मरीचिका' (1973) आदि। भगवतीचरण वर्मा ने अधिकतर अपने उपन्यासों में व्यापक सामाजिक, राजनीतिक फलक पर व्यक्ति पात्रों के मनोभावों को उभारने का प्रयत्न किया है। उनके उपन्यासों में समकालीन, राजनीतिक राष्ट्रीय आन्दोलन, साम्यवाद, गाँधीवाद आदि पर पात्रों की बहसें तो प्रचुर मात्रा में मिलती है। कथा में रोचकता पैदा करने के लिए वे संयोगों, सामान्य रुचि को तुष्ट करनेवाली चमत्कारपूर्ण घटनाएँ और काम प्रसंगों का कथासूत्र के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

1.2.4 यशपाल

यशपाल (1903-1976) का नाम साठोत्तर उपन्यासकारों में प्रमुख है। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले भी उपन्यास लिखे और बाद में भी उपन्यास लिखते रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद लिखे गये उपन्यासों में प्रमुख हैं - 'देश का भविष्य' (1968), 'बारह घंटे' (1963), 'अप्सरा का शाप' (1965), 'क्यों फंसे' (1968), 'तेरी मेरी उसकी बात' (1974) आदि। सांप्रदायिक विद्वेष की आग में तपकर मानवीय संवेदनायें किस प्रकार नष्ट होती है और आदमी कैसे जानवर बन जाता है इसका बोध कराने में यशपाल को सफलता मिली है। 'बारह घण्डों' में यशपाल पातिवृत्य संबन्धी परंपरागत मूल्यों की व्यर्थता और 'क्यों फँसे' में काम संबन्धों की निर्बाध आज़ादी का दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

1.2.5 रंगेय राघव

साठोत्तरकालीन उपन्यासकारों में रंगेय राघवजी का नाम उल्लेखनीय है। 'मेरी भवबाधा हरो' (1960) 'धरती मेरी' (1960), 'घर आखिरी आवाज़' (1962) आदि प्रमुख उपन्यास है। उन्होंने अपने सारे उपन्यास मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही लिखे हैं। लेकिन मार्क्सवाद को इतिहास पर आरोपित करने का प्रयास नहीं किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज की अनेक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। रंगेय राघव सामान्य जन के ऐसे रचनाकार हैं जो प्रगतिवाद का लेबल चिपकाकर दूर बैठे सामान्य जन का चित्रण नहीं करते, बल्कि उनमें बसकर करते हैं।

1.2.6 नागार्जुन

स्वतंत्र भारत के प्रमुख उपन्यासकार है नागार्जुन। साठोत्तर उपन्यासकार के रूप में भी नागार्जुन को ख्याति प्राप्त है। उनके प्रमुख प्रकाशित उपन्यास है - 'उग्रतारा', 'हीरक जयन्ती', 'जमनीय का बाबा' आदि। भाषा प्रयोग की दृष्टि से नागार्जुन प्रेमचन्दीय परंपरा के लेखक है, पर औपन्यासिक भाषा को उन्होंने नया आयाम भी दिया है। उनके उपन्यास की भाषा सरल होकर भी प्रखर और प्रवाहपूर्ण है। 'उनके उपन्यास 'दुखमोचन'

की समीक्षा करते हुए नलिन विलोचन शर्मा ने कहा कि यदि कुछ ऐसी पुस्तकें पाठ्यक्रम में स्वीकृत रहे तो अध्यापकों का काम एकदम सरल हो जाए। अशुद्ध प्रयोगों के निर्देश के लिए अशुद्धि ढूँढने में श्रम नहीं करना पडेगा।'[1] यह टिप्पणी नागार्जुन के उपन्यासों की भाषिक अशुद्धि के प्रति कठोर, पर सही है।

1.2.7 लक्ष्मीनारायण लाल

साठोत्तर उपन्यासकारों की सूची में आनेवाले प्रमुख उपन्यासकार है लक्ष्मीनारायण लाल। 'प्रेम एक अपवित्र नदी' (1972), 'अपना अपना राक्षस (1973), 'बडके भैया' (1973), 'हरा समंदर गोपी चंदर' (1974), 'श्रृंगार' (1975), 'दीवाना' (1976) आदि उनके दूसरे दौर के उपन्यास है जो शिल्प, भाषा किसी भी दृष्टि से सर्जनात्मकता की शर्तों को पूरा नहीं करते, इन उपन्यासों में उपन्यासकार का प्रयोग का उत्साह भी चुक गया प्रतीत होता है।

1.2.8 अमृत राय

साठोत्तर उपन्यासकारों में एक प्रमुख उपन्यासकार है अमृतराय। उनके जंगल (1969), भटियाली (1969), सुख-दुःख (1977), धुआँ (1977) आदि प्रकाशित हुई हैं। इनकी 1969 में प्रकाशित 'जंगल', 'भटियाली', और 1977 में प्रकाशित 'सुख-दुख' समकालीन यथार्थ और शाश्वत यथार्थ के अधिक सर्जनात्मक रूप को प्रस्तुत करते हैं। 'जंगल' आज भी समकालीन जिंदगी का चित्र प्रस्तुत करता है जो पुरानी व्यवस्था, नैतिक मान्यताओं और स्वीकृत मूल्यों का नकार नहीं है।

---

1. हिन्दी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय - पृ. 220

1.2.9 कमलेश्वर

कमलेश्वर जी (1932-2007), साठोत्तरी उपन्यासकारों में प्रमुख है। 'काली आँधी' (1974), 'आगामी अतीत' (1976), 'तीसरा आदमी' (1976), 'वही बात' (1980), 'सुबह-दोपहर-शाम' (1982), 'रेगिस्तान' (1988), 'कितने पाकिस्तान' (2000) आदि उनके प्रमुख उपन्यास है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में अधिकतर मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को विषय बनाया है। उनके उपन्यास 'सुबह-दोपहर-शाम' में भारतीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी दल की भूमिका को विषय बनाया गया है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के लिए कमलेश्वर ने मिथक इतिहास और फैंटेसी के मिश्रण से निर्मित कथासंसार का सृजन किया है।

1.2.10 शैलेश मटियानी

शैलेश मटियानी हिन्दी के एक ऐसे उपन्यासकार है, जिनकी उपन्यास यात्रा साढे तीन दशकों में फैली हुई है और उनमें कथ्य का वैविध्य, अनुभव, संवेदना और विचार की समृद्धि तथा सर्जनशीलता का लगातार विकास आश्चर्य में डालनेवाला है। शैलेश मटियानी के प्रसिद्ध उपन्यास है 'हौलदार' (1961), 'एक मूठ सरसों' (1962), 'भागे हुए लोग' (1966), 'जलतरंग' (1973), 'बर्फ गिर चुकने के बाद' (1975), 'आकाश कितना अनंत है' (1979), 'चिट्टी रसैन' (1961) आदि। 'चिट्टी रसैन', 'एक मूठ सरसों' आदि आरंभिक उपन्यासों में आँचलिकता का आग्रह, कथा-सूत्र और भाषा तक ही सीमित है। इन उपन्यासों में पहाड़ी अंचल की स्त्री की पीडा जो पुरुष-सत्ता प्रधान व्यवस्था की अनिवार्य देन है। बहुत मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुआ है। उनके 'जलतरंग', 'उगते सूरज की किरण' आदि उपन्यासों में भारतीय राजनीति के खोटे

सिक्कों का जिक्र किया गया है। राजनीति की गन्दी गलियों को राजनीति का अधिकार माना गया है।

1.2.11 उपेन्द्रनाथ अश्क

साठोत्तरी उपन्यास साहित्य में उपेन्द्रनाथ अश्क (1910-1996) का विशिष्ट योगदान रहा है। अश्कजी साहित्य के सभी विधाओं में काम किया है। वह किसी एक विधा से बंधकर नहीं रहे और न किसी विधा में एक ही रंग की रचनाएँ करते रहे। सभी विधाओं में काम करते हुए भी उनकी मुख्य पहचान कथाकार के रूप में रहे। उनके उपन्यासों में समाजवादी परंपरा का जो रूप दृश्यमान होता है वह उन चरित्रों के द्वारा उत्पन्न होता है जिन्हें उन्होंने अपनी अनुभव दृष्टि और अद्‌भुत वर्णन-शैली द्वारा प्रस्तुत किया है। अश्क के व्यक्ति चिंतन के पक्ष को देखकर यही प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने चरित्रों को बडी ही बारीकी से रूपायित किया है जिसकी एक-एक रेखाओं से उसकी संघर्षशीलता दृष्टिगोचर होता है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं - 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'गर्म राख', 'सिरतारों के खेल' आदि।

1.2.12 डॉ. रामदरश मिश्र

हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रमुख उपन्यासकारों में एक है डॉ. रामदरश मिश्र। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाने में डॉ. रामदरश मिश्र का योगदान महत्वपूर्ण है। वह पहले गाँधीवादी थे बाद में कुछ हद तक समाजवादी हो गये। उनके उपन्यासों में नये मूल्यों का अन्वेषण का छटपटाहट दिखाई देता है। उनका पहला उपन्यास है 'पानी के प्राचीर' (1961)। इसके बाद उसने 'जल टूटता हुआ' (1969), 'सूखता हुआ तालाब' (1972), 'अपने लोग' (1976), 'रात का सफर' (1976), 'आकाश की छत' (1979), 'बिना दरवाजे का मकान' (1984), 'दूसरा घर' (1986),

'बीस बरस' (1996), 'थकी हुई सुबह' (1994) आदि उपन्यास लिखे। मिश्रजी एक बहुमुखी प्रतिभा है। उन्होंने केवल उपन्यास ही नहीं बल्कि कहानी, काव्य, आलोचना, निबन्ध आदि क्षेत्रों में भी अपनी कलम चलायी है। उसे काव्य के प्रति विशेष रुचि होने पर भी कथाकार के रूप में वह प्रसिद्ध हुए। मिश्रजी अपने अनुभवों को ही अपनी रचना का आधार बनाया है।

1.2.13 ममता कालिया

साठोत्तरी महिला उपन्यास साहित्यकारों में प्रमुख है ममता कालिया। ममताजी ने अपने साहित्य में नारी विमर्श को प्रमुखता दिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा पारिवारिक जीवन की निराशाओं, अंतर्विरोधों और असंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। इसमें वह सफल भी हुई है। नारी की समस्याओं का चित्रण करके उसे पुरुष के बराबर का स्थान देना ही ममताजी के साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रतिभाशाली साहित्यकार के साहित्य का परिचय पाने के लिए उनके समग्र जीवन परिचय को जान लेना अति आवश्यक होगा। उन्हें 'साप्ताहिक हिन्दुस्थान' दिल्ली की ओर से सन् 1963 में श्रेष्ठ कहानीकार का पुरस्कार मिला। सन् 1988 में हिन्दी साहित्य परिषद पंजाब का पुरस्कार मिला। सन् 1989 में उन्हें अभिनव भारती कल्कत्ता की ओर से समग्र कथा साहित्य पर 'रचना सम्मान' भी मिला। सन् 1990 में रोटरी क्लब इलाहाबाद की ओर से उन्हें ठहोकेशनल पुरस्कार मिला। उनके प्रमुख उपन्यास हैं - 'बेघर' (1971), 'नरक दर नरक' (1975), 'लड़कियाँ' (1980), 'प्रेमकहानी' (1984), 'एक पत्नी के नोट्स' (1994), 'दौड़' (2000)। वह सिर्फ उपन्यास ही नहीं अपितु कविता, नाटक, बाल साहित्य और कहानी आदि क्षेत्र पर भी अपनी वैभव दिखाया है।

1.2.14 गिरिराज किशोर

गिरिराज किशोर का पहला उपन्यास 'लोग' 1966ई में प्रकाशित हुआ। इसके बाद वह चालीस वर्षों से उपन्यास लेखन में निरंतर सक्रिय रहे। उनके प्रमुख उपन्यास है - 'चिडिया घर' (1968), 'यात्राएँ' (1971), 'जुगलबंदी' (1973), 'दो' (1974), 'इन्द्र सुने' (1978), 'दावेदार' (1979), 'तीसरा सत्ता' (1982), 'यथा प्रस्तावित' (1982), 'परिशिष्ट' (1984), 'असलाह' (1987), 'अन्तर्ध्वंस' (1990), 'ढाई घर' (1991), 'यातनाघर' (1997), 'पहला गिरमिटिया' (1999) आदि। विषय की वैविध्यता उनकी उपन्यासों की प्रमुख सविशेषता है। वह एक यथार्थवादी साहित्यकार है। उन्होंने अपने भोगे हुआ यथार्थ को ही रचनाओं का विषय बनाया है। गिरिराज किशोर का उपन्यास के संबन्ध में यही मान्यता रहा है कि मानव जीवन से संबन्धित अनेक घटनाओं का सूक्ष्म एवं यथार्थ अंकन इस विधा के द्वारा होता है। जिस साहित्य में जन जीवन का यथार्थ का चित्रण नहीं होता वह साहित्य निरर्थक है। उनके साहित्यिक जीवन में वह अनेक साहित्यकारों से प्रभावित थे। जिनमें प्रमुख है जयशंकर प्रसाद, शैलेश मटियानी, अमरकांत आदि। हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्प और भाषा की दृष्टि से गिरिराज किशोर का कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं है। पर इनकी सार्थकता संदिग्ध है।

1.2.15 मेहरुन्निसा परवेज़

साठोत्तरी उपन्यासकारों में मेहरुन्निसा परवेज़ का एक विशिष्ट पहचान है। अनुभूति के आधार पर ही इन्होंने कृतियाँ लिखी है। इनकी रचनाओं में जीवन की तकलीफों और विवशताओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। सामाजिक समस्याओं से जूझकर परिवर्तन लाने की आकुलाहट इनकी कृतियों में नज़र आती है। प्रेम और सेक्स का आधुनिक स्वरूप इनकी कृतियों में उभर आई है। उनके प्रमुख उपन्यास है - 'आँखों की

दहलीज', 'कोरजा', 'उसका घर', 'अकेला पलाश', 'समरांगण', 'पासांग' आदि। अपने पहले उपन्यास 'आँखों की दहलीज' में इन्होंने सेक्स के विविध रूपों को उभारा है। नारी जीवन की सार्थकता उसके स्त्रीत्व या मातृत्व में नहीं है, यह इस उपन्यास के द्वारा लेखिका व्यक्त करती है। 'अकेला पलाश' दाम्पत्य जीवन में आये ठंडेपन की समस्या को लेकर लिखा गयाहै। जिंदगी के विभिन्न रंग, रूप और समस्याओं को लेखिका ने 'कोरजा' उपन्यास में चित्रित किया है।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में सभी विधाओं का विकास तेज़ी से हो रहा है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मानव मूल्य, मनोवैज्ञानिक, यौनपरक, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, मार्क्सवादी परिस्थितियाँ आदि का प्रभाव आधुनिक समय के उपन्यासों में बढ़ता जा रहा है। अगले अध्याय में मेहरुन्निसाजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विशद अध्ययन किया जायेगा।